इकाई11 वाक् (10.125), पुरुष (10.90), मरुत्(1.85), अभय (6.40)

इकाई की रूपरेखा

11.0 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् आप –

- ऋग्वेद एवं अथर्ववेद के प्रमुख सूक्तों के वर्ण्य-विषय से अवगत हो सकेंगे।
- वाक्, पुरुष, मरुत् आदि के कर्म, गुण एवं स्वरूपों के वैदिक आधार से अवगत हो सकेंगे।
- सृष्टि के विशिष्ट स्वरूप को प्रतिपादित कर सकेंगे।
- एतत्सम्बद्ध ज्ञान का उपयोग आवश्यकतानुगत अपेक्षित स्थलों पर कर सकेंगे।

11.1 प्रस्तावना

विश्व साहित्य में वेद प्राचीनतम है। वेदों के ऋक्, यजु, साम एवं अथर्व के भेद से चार प्रकार प्रसिद्ध हैं। कात्यायन के अनुसार वेदों का त्रिविधविभाग किया गया है–**ऋचो यजूंषि सामानि निगदाः मन्त्राः।** ऋक् पद्यात्मक, यजुष् गद्यात्मक, साम गीतात्मक। अथर्ववेद का ग्रथन ऋक् अर्थात् पद्यात्मक होने के कारण एतत् सम्बद्ध निर्देश पृथक् से नहीं किया गया है। महाभाष्य एवं चरणव्यूह के अनुसार ऋग्वेद की 21, यजुर्वेद की 101, सामवेद की 1000 तथा अथर्ववेद की 09 शाखायें थी, किन्तु वर्तमान में क्रमशः 03, 06, 03 एवं दो उपलब्ध होती हैं।

भारतीय परम्परा में वेद अपौरुषेय माने जाते हैं। वेदमन्त्रों का कोई कर्त्ता नहीं है, अपितु ऋषियों द्वारा ये समाधि अवस्था में द्रष्ट हैं, जिसका उल्लेख वैदिक संहिताओं में प्राप्त होता है। इस इकाई में आप ऋग्वेद तथा अथर्ववेद के कतिपय प्रमुख सूक्तों का अध्ययन करेंगे।

11.2 वाक् (ऋग्वेद10.125)

ऋषि – वाक्, देवता – परमात्मा।

अहं रुद्रेभिर्वसुभिश्चराम्यहमादित्यैरुत विश्वदेवैः।
अहं मित्रावरुणोभा बिभर्म्यहमिन्द्राग्नी अहमश्विनोभा।।1।।

अन्वय – अहं रुद्रेभिः वसुभिः चरामि, अहम् आदित्यैः उत विश्वदेवैः (चरामि), अहं उभा मित्रावरुणा बिभर्मि, अहम् इन्द्राग्नी, अहम् उभा अश्विना (बिभर्मि)।

शब्दार्थ – अहम् = मैं, रुद्रेभिः = रुद्रों के साथ, वसुभिः = वसुओं के साथ, चरामि = विचरण करती हूँ, अहम् = मैं, आदित्यैः = आदित्यों के साथ, उत = और, विश्वदेवैः = विश्वेदेवों के साथ, अहम् = मैं, मित्रावरुणा = मित्र और वरुण को, उभा = दोनों को, बिभर्मि = धारण करती हूँ, अहम् = मैं, इन्द्राग्नी = इन्द्र और अग्नि को, अहम् = मैं, अश्विना = अश्विनीकुमारों को, उभा = दोनों को।

अनुवाद – मैं रुद्रों और वसुओं के साथ विचरण करती हूँ, मैं आदित्यों और विश्वदेवों के साथ विचरण करती हूँ, मैं मित्र और वरुण को, इन्द्र और अग्नि को तथा दोनों अश्विनीकुमारों को (धारण करती हूँ)।

व्याकरण – मित्रावरुणा = मित्रं च वरुणं च, सुपां सुलुगिति द्वितीयाया आकारः।

विशेष – माया के आधार से ब्रह्म प्रभृति सभी की उत्पत्ति होती है।

अहं सोममाहनसं बिभर्म्यहं त्वष्टारमुत पूषणं भगम्।
अहं दधामि द्रविणं हविष्मतेसुप्राव्ये यजमानाय सुन्वते।।2।।

अन्वय – अहम् आहनसं सोमं बिभर्मि, अहं त्वष्टारम् उत पूषणं भगम् (बिभर्मि), अहं द्रविणं हविष्मते सुप्राव्ये सुन्वते यजमानाय द्रविणं दधामि।

शब्दार्थ – अहम् = मैं, सोमम् = सोम को, आहनसम् = अभिषव किये जाने वाले/शत्रुओं को नष्ट करने वाले, बिभर्मि = धारण करती हूँ, अहम् = मैं, त्वष्टारम् = त्वष्टा को, उत = और, पूषणम् = पूषा को, भगम् = भग को, अहम् = मैं, दधामि = धारण करती हूँ, द्रविणम् = धन को, हविष्मते = हवि से युक्त, सुप्राव्ये = शोभन हवि को देवताओं तक पहुंचाने वाले, सुन्वते = सोमाभिषव करने वाले, यजमानाय = यजमान के लिये।

अनुवाद – मैं (यज्ञ में) अभिषव किये जाने वाले सोम को धारण करती हूँ, मैं त्वष्टा, पूषा और भग को (धारण करती हूँ)। मैं हविर्युक्त, शोभन हवि को (देवताओं तक) पहुँचाने वाले तथा सोमाभिषव करने वाले यजमान के लिये धन धारण करती हूँ।

व्याकरण – सुन्वते = षुञ् अभिषव के अर्थ में आत्मनेपद लट् लकार, प्रथम पुरुष, एकवचन।

विशेष – ऐश्वर्यस्य समग्रस्य धर्मस्य यशसः श्रियः, ज्ञानवैराग्ययोश्चैव षण्णां **भग** इतीरणा।

अहं राष्ट्री संगमनी वसूनां चिकितुषी प्रथमा यज्ञियानाम्।
तां मा देवा व्यदधुः पुरुत्रा भूरिस्थात्रां भूर्यावेशयन्तीम्।।3।।

अन्वय – अहं राष्ट्री, वसूनां संगमनी, चिकितुषी, यज्ञियानां प्रथमा (अस्मि)। तां भूरिस्थात्रां भूरि आवेशयन्तीं मा देवाः पुरुत्रा वि अदधुः।

वाक् (10.125), पुरुष (10.90), मरुत्(1.85), अभय (6.40)

शब्दार्थ – अहम् = मैं, राष्ट्री = सम्पूर्ण जगत की शासिका, वसूनाम् = धनों को, संगमनी = प्राप्त कराने वाली, चिकितुषी = जानने वाली, प्रथमा = सर्वप्रथम, यज्ञियानाम् = पूजनीय देवताओं में, ताम् = उस, मा = मुझको, देवाः = देवों ने, वि अदधुः = विभिन्न प्रकार से धारण किया है, पुरुत्रा = अनेक स्थानों पर, भूरिस्थात्राम् = अनेक रूपों में अवस्थित, भूरि = बहुतों में, आवेशयन्तीम् = प्रवेश करने वाली।

अनुवाद – मैं सम्पूर्ण जगत् की शासिका, धनों को प्राप्त कराने वाली, सबको जानने वाली तथा पूजनीयों में प्रमुख हूँ। अनेक रूपों में अवस्थित तथा बहुतों में प्रवेश करनेवाली उस मुझको देवों ने अनेक स्थानों पर विविध प्रकार से धारण किया है।

व्याकरण – **व्यदधुः** = वि उपसर्ग पूर्वक डुधाञ् धारणपोषणयोः धातु से लङ् लकार।

विशेष – आदि शक्ति द्वारा जगत् के धारण का उल्लेख है।

मया सो अन्नमत्ति यो विपश्यति यः प्राणिति य ईं शृणोत्युक्तम्।
अमन्तवो मां त उप क्षियन्ति श्रुधिश्रुत श्रद्धिवं ते वदामि।।4।।

अन्वय – यः विपश्यति, यः प्राणिति, यः ईम् उक्तं शृणोति सः मया अन्नम् अत्ति। अमन्तवः ते माम् उप क्षियन्ति। हे श्रुत, श्रुधि ते श्रद्धिवं वदामि।

शब्दार्थ – मया = मेरे द्वारा, सः = वह, अन्नम् = अन्न, अत्ति = खाता है, यः = जो, विपश्यति = देखता है, यः = जो, प्राणिति = साँस लेता है, यः = जो, ईम् = उसको, शृणोति = सुनता है, उक्तम् = कही गई बात को, अमन्तवः = न जानने वाले, ते = वे, माम् = मुझको, उप = समीप, क्षियन्ति = निवास करते हैं, श्रुधि = सुनो, श्रुत = हे सुनने वाले, श्रद्धिवम् = श्रद्धायुक्त, ते = तुम्हारे लिये, वदामि = कहती हूँ।

अनुवाद – जो देखता है, जो साँस लेता है, जो कही बात को सुनता है, वह मेरे द्वारा खाता है। (यद्यपि) इसको नहीं जानते हैं, (फिर भी) वे मेरे पास निवास करते हैं। हे सुनने वाले, सुनो, तुम्हारे लिये श्रद्धा के योग्य (बात) कहती हूँ।

व्याकरण – **विपश्यति** = वि उपसर्ग पूर्वक प्रेक्षणार्थ दृश् धातु लट् लकार, प्रथम पुरुष, एकवचन।

विशेष – देवी के माहात्म्य का वर्णन किया गया है।

अहमेव स्वयमिदं वदामि जुष्टं देवेभिरुत मानुषेभिः।
यं कामये तं तमुग्रं कृणोमि तं ब्रह्माणं तमृषिं तं सुमेधाम्।।5।।

अन्वय – अहम् एव स्वयं देवेभिः उत मानुषेभिः जुष्टम् इदं वदामि। यं कामये तं तम् उग्रं कृणोमि, तं ब्रह्माणं, तम् ऋषिं, तं सुमेधाम् (कृणोमि)।

शब्दार्थ – अहम् = मैं, एव = ही, स्वयम् = स्वयं, इदम् = इस बात को, वदामि = कहती हूँ, जुष्टम् = प्रिय/अभीष्ट, देवेभिः = देवताओं द्वारा, उत = और, मानुषेभिः = मनुष्यों द्वारा, यत् = जिसको, कामये = चाहती हूँ, तं तम् = उस उसको, उग्रं = प्रचण्ड, कृणोमि = करती हूँ, तम् = उसको, ब्रह्माणम् = सबसे बड़ा, तम् = उसको, ऋषिम् = मन्त्र द्रष्टा, तम् = उसको, सुमेधाम् =सुन्दर प्रज्ञा वाला।

अनुवाद – मैं स्वयं ही देवताओं तथा मनुष्यों द्वारा अभीष्ट इस (बात) को कहती हूँ। जिसको चाहती हूँ, उस-उसको प्रचण्ड बनाती हूँ, उसको ब्रह्मा (बनाती हूँ), उसको मन्त्रद्रष्टा (बनाती हूँ), उसको सुन्दर प्रज्ञावाला (बनाती हूँ)।

व्याकरण – **जुष्टम्** = प्रीति एवं सेवनार्थ जुष् धातु से क्त प्रत्यय।

विशेष – देवी द्वारा सृष्टि प्रपंच का निर्देश प्राप्त होता है।

अहं रुद्राय धनुरा तनोमि ब्रह्मद्विषे शरवे हन्तवा उ।
अहं जनाय समदं कृणोम्यहं द्यावापृथिवी आ विवेश।।6।।

अन्वय – अहं ब्रह्मद्विषे हन्तवै रुद्राय शरवे धनुः आ तनोमि। अहं जनाय समदं कृणोमि, अहं द्यावापृथिवी आ विवेश।

शब्दार्थ – अहम् = मैं, रुद्राय = रुद्र के लिये, धनुः = धनुष, आतनोमि = विस्तारित करती हूँ, ब्रह्मद्विषे = स्तुतियों से द्वेष करने वाले के लिये, शरवे = बाण के लिये, हन्तवै = मारने के लिये, उ = निपात, अहम् = मैं, जनाय = स्तोतृजन के लिये, समदम् = युद्ध, कृणोमि = करती हूँ, अहम् = मैं, द्यावापृथिवी = आकाश से लेकर पृथिवी तक सर्वत्र, आ विवेश = प्रविष्ट अर्थात् व्याप्त हूँ।

अनुवाद – स्तुतियों से द्वेष करने वाले को मारने के लिये मैं रुद्र के बाण के लिये उसके धनुष को विस्तारित करती हूँ। मैं (अपने) स्तोतृ जन के लिये संग्राम करती हूँ, मैं आकाश से लेकर पृथिवीपर्यन्त सर्वत्र व्याप्त हूँ।

व्याकरण – **समदम्** = समानं माद्यन्त्यस्मिन् इति समत् संग्रामः।

विशेष – सृष्टि में लोककल्याणार्थ भगवती के व्यापार का उल्लेख है।

अहं सुवे पितरमस्य मूर्धन् मम योनिरप्स्वन्तः समुद्रे।
ततो वि तिष्ठे भुवनानु विश्वोतामूं द्यां वर्ष्मणोप स्पृशामि।।7।।

अन्वय – अहं पितरं अस्य मूर्धन् सुवे। मम योनिः समुद्रे अप्सु अन्तः। ततः अनु विश्वा भुवना वि तिष्ठे, उत अमूं द्यां वर्ष्मणा उप स्पृशामि।

शब्दार्थ – अहम् = मैं, सुवे = उत्पन्न करती हूँ, पितरम् = पिता द्युलोक को, अस्य = उस परमात्मा के, मूर्धन् = शिर के ऊपर, मम = मेरा, योनिः = मूल स्थान, अन्तः = अन्दर, समुद्रे = समुद्र में, अप्सु = जलों में, ततः = वहीं से, वि तिष्ठे = विविध रूप से स्थित होती हूँ, विश्वा = सम्पूर्ण, भुवना = लोकों को, अनु = क्रमशः, उत = और, अस्य = उस, द्याम् = द्युलोक को, वर्ष्मणा = शिर/शरीर से, उपस्पृशामि = स्पर्श करती हूँ/व्याप्त करती हूँ।

अनुवाद – इस लोक के शिर पर पिता (द्युलोक) को उत्पन्न करती हूँ। मेरा मूल स्थान समुद्र में जल के अन्दर है। वहीं से सम्पूर्ण लोकों को व्याप्त कर स्थित होती हूँ और उस द्युलोक का (अपने) शिर से स्पर्श करती हूँ।

व्याकरण – **सुवे** = षुञ् अभिषवार्थक धातु से आत्मनेपद लट् लकार उत्तम पुरुष, एकवचन।

विशेष – देवी के द्वारा सृष्टिप्रक्रिया सम्पादन का उल्लेख किया गया है।

अहमेव वात इव प्र वाम्यारभमाणा भुवनानि विश्वा।
परो दिवा पर एना पृथिव्यैतावती महिना सं बभूव।।8।।

वाक् (10.125), पुरुष (10.90), मरुत्(1.85), अभय (6.40)

अन्वय – अहं विश्वा भुवनानि आरभमाणा वातः इव प्रवामि। दिवः परः एना पृथिव्या परः एतावती महिमा संबभूव।

शब्दार्थ – अहम् = मैं, एव = ही, वातः इव = वायु के समान, प्रवामि = प्रवाहित होती हूँ, आरभमाणा = ग्रहण करती हुई, भुवनानि = लोकों को, विश्वा = सम्पूर्ण, परः = परे, दिवा = द्युलोक के, परः = परे, एना = इस, पृथिव्या = पृथिवी के, एतावती = इतनी, महिना = महिमा से, संबभूव = हुई हूँ।

अनुवाद – सम्पूर्ण लोकों को ग्रहण करती हुई मैं ही वायु के समान सर्वत्र विचरण करती हूँ। द्युलोक से परे तथा इस पृथिवी से परे इतनी (विशाल अपनी) महिमा से हुई हूँ।

व्याकरण – **महिना** = महिमन् शब्द के तृतीया एकवचन का रूप लौकिक संस्कृत में महिम्ना बनता है।

विशेष – वाणी की सर्वव्यापकता का उल्लेख प्राप्त होता है।

11.3 पुरुष (ऋग्वेद 10.90)

ऋषि – नारायण, देवता –पुरुष।

सहस्रशीर्षा पुरुषः सहस्राक्षः सहस्रपात्।
स भूमिं विश्वतो वृत्वात्यतिष्ठद्दशाङ्गुलम्।।1।।

अन्वय – पुरुषः सहस्रशीर्षा सहस्राक्षः सहस्रपात्। स भूमिं विश्वतः वृत्वा दशाङ्गुलम् अति अतिष्ठत्।

शब्दार्थ – सहस्रशीर्षा = हजारों सिर वाला, पुरुषः = परम पुरुष, सहस्राक्षः = हजारों नेत्र वाला, सहस्रपात् = हजारों पैर वाला, सः = वह, भूमिम् = पृथिवी को, विश्वतः = चारों तरफ से, वृत्वा = व्याप्त करके, अति = अधिक, अतिष्ठत् = स्थित है, दशाङ्गुलम् = दश अंगुल परिमाण में।

अनुवाद – पूर्णपुरुष हजारों सिर वाला, हजारों नेत्र वाला तथा हजारों पैर वाला है। वह पृथिवी को चारों तरफ से व्याप्त करके दश अंगुल (परिमाण में) स्थित रहता है।

व्याकरण – **अतिष्ठत्** = गतिनिवृतौ **स्था** धातु से लङ् लकार, प्रथम पुरुष, एकवचन।

विशेष – **दशाङ्गुलम्** = यह उपलक्षण है वस्तुतः जो कोई भी वस्तु ब्रह्माण्ड में है, उससे परिमाण में पुरुष दश अङ्गुल अधिक है। **सहस्र** = मन्त्र में एकाधिक बार प्राप्त पद अनन्त का वाचक है।

पुरुष एवेदं सर्वं यद्भूतं यच्च भव्यम्।
उतामृतत्वस्येशानो यदन्नेनातिरोहति।।2।।

अन्वय – इदं सर्वं यत् भूतं यत् च भव्यं (तत्) पुरुषः एव। (सः) अमृतत्वस्य ईशानः उत यत् अन्नेन अतिरोहति (तस्यापि)।

शब्दार्थ – पुरुषः = परम पुरुष, एव = ही, इदम् = यह, सर्वम् = सम्पूर्ण, यत् = जो, भूतम् = हो गया है, यत् = जो, च = और, भव्यम् = होने वाला है, उत = और, अमृतत्वस्य = अमरत्व का, ईशानः = स्वामी, यत् = जो, अन्न = अन्न से, अतिरोहति = समृद्ध होता है।

अनुवाद – यह सब, जो हो गया है तथा जो होगा, पुरुष ही है और यह अमरत्व का स्वामी है तथा जो अन्न से समृद्ध होता है (उनका भी)।

व्याकरण – ईशानः = ईश् ऐश्वर्यार्थक से शानच्।

विशेष – इस जगत् में जो कोई प्राणी है, वह अन्न से ही पुष्ट होता है अतः उसे अन्नाद कहा जाता है।

एतावानस्य महिमातो ज्यायांश्च पूरुषः।
पादोऽस्य विश्वा भूतानि त्रिपादस्यामृतं दिवि।।3।।

अन्वय – एतावान् अस्य महिमा, अतः ज्यायान् च पुरुषः। अस्य पादः विश्वा भूतानि, अस्य त्रिपात् अमृतं दिवि।

शब्दार्थ – एतावान् = इतनी, अस्य = इसकी, महिमा = ऐश्वर्य, अतः = उससे भी, ज्यायान् = बढ़कर, च = और, पुरुषः = परम पुरुष, पादः = एक चौथाई अंश, अस्य = उसका, विश्वा = सम्पूर्ण, भूतानि = प्राणी, त्रिपात् = तीन चतुर्थांश, अस्य = उसका, अमृतम् = अमर लोक, दिवि = द्युलोक में।

अनुवाद – इतनी उसकी महिमा है और उससे भी बड़ा पुरुष है। उसके चतुर्थांश में सम्पूर्ण लोक है, इसका तीन चतुर्थांश, जो अमर लोक है, वह द्युलोक में है।

व्याकरण – ज्यायान् = वृद्ध एवं प्रशस्य पद का ईयसुन् तथा इष्ठन् प्रत्यय के योग से ज्या आदेश हो जाता है।

विशेष – पूरुषः = पुरुष पद के प्रथम वर्ण का दीर्घ रूप भी वेद में प्राप्त होता है।

त्रिपादूर्ध्व उदैत्पुरुषः पादोऽस्येहाभवत् पुनः।
ततो विष्वङ्व्यक्रामत् साशनानशने अभि।।4।।

अन्वय – त्रिपात् पुरुष ऊर्ध्वः उद् ऐत्, अस्य पादः पुनः इह अभवत्। ततः विष्वङ् साशनानशने अभि वि अक्रामत्।

शब्दार्थ – इह = यहाँ, अभवत् = रह गया, पुनः = फिर, ततः = इससे, विष्वङ् = चारों तरफ, वि अक्रामत् = फैलाया, साशनानशने = जीव तथा निर्जीव, अभि = तरफ।

अनुवाद – तीन-चतुर्थांश के साथ पुरष ऊपर चला गया, फिर भी एक चतुर्थांश यहीं पर रह गया। इससे यह अपने को जीव तथा निर्जीव सभी रूपों में चारों तरफ फैलाया।

व्याकरण – अक्रामत् = पादविक्षेपार्थ में क्रम धातु से लङ् लकार, प्रथम पुरुष, एकवचन।

वाक् (10.125), पुरुष (10.90), मरुत्(1.85), अभय (6.40)

विशेष – **साशनानशने** = द्वन्द्व समास, पदान्तीय एकार द्विवचनान्त होने के कारण प्रगृह्य संज्ञक है, अतः पदपाठ में इतिकरण हुआ है। द्वन्द्व समास में पदों के मध्य पदपाठ में अवग्रह नहीं आता है।

तस्माद्विराडजायत विराजो अधि पूरुषः।
स जातो अत्यरिच्यत पश्चाद्भूमिमथो पुरः।।5।।

अन्वय – तस्मात् विराड् अजायत, विराजः अधि पुरुषः (अजायत)। सः जातः (एव) अति अरिच्यत, पश्चात् भूमिम् अथो पुरः (ससर्ज)।

शब्दार्थ – तस्मात् = उस चतुर्थांश से, विराट् = परम पुरुष से उत्पन्न प्रथम तत्त्व, अजायत = उत्पन्न हुआ, विराजः = विराट् नामक प्रथम तत्त्व से, अधि = बाद में, पुरुषः = जीवात्मा के रूप में पुरुष, सः = वह, जातः = उत्पन्न होते ही, अति अरिच्यत = (देव मनुष्य आदि रूप में विराट् से) अलग कर दिया, पश्चात् = इसके बाद, भूमिम् = पृथिवी, अथो = इसके बाद, पुरः = जीवात्मा के लिए शरीर।

अनुवाद – उस (चतुर्थांश) से विराट् उत्पन्न हुआ, विराट् से (जीवात्मा के रूप में) पुरुष (उत्पन्न हुआ) उत्पन्न होते ही उसने (अपने को देव मनुष्य आदि रूप में विराट् से) अलग कर दिया। इसके बाद पृथिवी को (उत्पन्न किया), इसके बाद (जीवात्मा के लिए) शरीर (का निर्माण किया)।

व्याकरण – **अरिच्यत** = रिच् धातु वियोजन एवं सम्पर्कार्थ में कर्मवाच्य के अन्तर्गत आत्मनेपद, लङ् लकार, प्रथम पुरुष, एकवचन में प्रयुक्त।

विशेष – **विराट्**= सृष्टिप्रक्रिया की उस अवस्था का सूचक है जब स्त्री-पुरुष दोनों तत्त्व मिश्रित थे।

यत्पुरुषेण हविषा देवा यज्ञमतन्वत।
वसन्तो अस्यासीदाज्यं ग्रीष्म इध्मः शरद्धविः।।6।।

अन्वय – देवा यत् पुरुषेण हविषा यज्ञम् अतन्वत। अस्य (यज्ञस्य) आज्यं वसन्तः आसीत्, इध्मः ग्रीष्मः (आसीत्), हविः (च) शरद् (आसीत्)।

शब्दार्थ –यत् = जब, पुरुषेण = पुरुषरूप, हविषा = हवि से, देवाः = देवताओं ने, यज्ञम् = यज्ञ को, अतन्वत = सम्पन्न किया, वसन्तः = वसन्त ऋतु, अस्य = उसका, आसीत् = था, आज्यम् = घी, ग्रीष्मः = ग्रीष्म ऋतु, इध्मः = इन्धन, शरत् = शरद् ऋतु, हविः = हवि।

अनुवाद – देवताओं ने जब पुरुषरूपी हवि से यज्ञ किया, (उस समय) वसन्त इस (यज्ञ) का घी था, ग्रीष्म इसका इन्धन था, शरद् इसका हवि था।

व्याकरण – **अतन्वत** = विस्तार अर्थ में तनु धातु आत्मनेपद, लङ् लकार, प्रथम पुरुष, एकवचन।

विशेष – **यज्ञम्** = यह पद मन्त्र में सृष्टि यज्ञ के क्रम में प्रयुक्त है।

तं यज्ञं बर्हिषि प्रौक्षन् पुरुषं जातमग्रतः।
तेन देवा अयजन्त साध्या ऋषयश्च ये।।7।।

अन्वय – तम् अग्रतः जातं यज्ञं पुरुषं (देवाः) बर्हिषि प्र औक्षन्। देवाः साध्याः ये ऋषयश्च आसन् (ते सर्वे) तेन (पुरुषेण) अयजन्त।

शब्दार्थ – तम् = उस, यज्ञम् = बलि दिये जाने वाले को, बर्हिषि = कुशा पर, प्र औक्षन् = जल से अभिषेक कराया, पुरुषम् = पुरुष को, जातम् = उत्पन्न, अग्रतः = सर्वप्रथम, तेन = उससे, देवाः = देवताओं ने, अयजन्त = यज्ञ किया, साध्याः = प्रजापति आदि सृष्टि कर्त्ताओं ने, ऋषयः = ऋषियों ने, च = और, ये = जो।

अनुवाद – उस सबसे पहले उत्पन्न बलि दिये जाने वाले पुरुष (पशु) को देवताओं ने पवित्र कुशा पर (रखकर) प्रोक्षण किया। उस (पुरुष पशु) से देवताओं ने, प्रजापति आदि सृष्टिकर्ताओं ने तथा जो ऋषि थे उन्होंने यज्ञ किया।

व्याकरण – **बर्हिषि** = बर्हिष् प्रातिपदिकहलन्त नपुंसकलिंग, सप्तमी एकवचन।

विशेष – प्रकृत मन्त्र में पुरुष का ही कुशाओं के ऊपर प्रोक्षण करके उसे हविः रूप में समर्पित करने का उल्लेख है।

तस्माद्यज्ञात्सर्वहुतः सम्भृतं पृषदाज्यम्।
पशूँन्ताँश्चक्रे वायव्यानारण्यान्ग्राम्याश्च ये।।8।।

अन्वय – तस्मात् सर्वहुतः यज्ञात् पृषदाज्यं संभृतम्। (तस्मात् संभृतात् पृषदाज्यात्) वायव्यान् आरण्यान् पशून् ये च ग्राम्याः तान् चक्रे।

शब्दार्थ – तस्मात् = उस, यज्ञात् = यज्ञ से, सर्वहुतः = उस यज्ञ से जिसमें सर्वरूपात्मक पुरुष का हवन हुआ था, संभृतम् = इकट्ठा किया गया, पृषदाज्यम् = दधिमिश्रित घृत, पशून् = पशुओं को, तान् = उन, चक्रे = उत्पन्न किया, वायव्यान् = आकाश में रहने वाले, आरण्यान् = जंगल में रहने वाले, ग्राम्याः = ग्रामों में रहने वाले, च = और, ये = जो थे।

अनुवाद – उस यज्ञ से जिसमें सर्वरूपात्मक पुरुष का हवन हुआ था, दधिमिश्रित घृत इकट्ठा किया गया। (उससे एकत्रित दधिमिश्रित घृत से उस पुरुष ने) आकाश में रहने वाले, जंगल में रहने वाले तथा ग्रामों में रहने वाले जो पशु थे उनको उत्पन्न किया।

व्याकरण – **चक्रे** = कृ करणे, आत्मनेपद, लिट् लकार, प्रथम पुरुष, एकवचन।

विशेष – **पृषदाज्यम्** = सृष्टियज्ञ में दधि और आज्य के संयोग से बनता है।

तस्माद्यज्ञात्सर्वहुत ऋचः सामानि जज्ञिरे।
छन्दांसि जज्ञिरे तस्माद् युजुस्तस्मादजायत।।9।।

अन्वय – तस्मात् सर्वहुतः यज्ञात् ऋचः सामानि (च) जज्ञिरे, तस्मात् छन्दांसि जज्ञिरे, तस्मात् यजुः अजायत।

शब्दार्थ – तस्मात् = उस, यज्ञात् = यज्ञ से, सर्वहुतः = उस यज्ञ में जिसमें सर्वरूपात्मक पुरुष का हवन हुआ था, ऋचः = ऋचायें, सामानि = साम, छन्दांसि = गायत्र्यादि छन्द, जज्ञिरे = उत्पन्न हुये, तस्मात् = उससे, यजुः = यजुष्, तस्मात् = उससे, अजायत = उत्पन्न हुये।

वाक् (10.125), पुरुष (10.90), मरुत्(1.85), अभय (6.40)

अनुवाद – उस सर्वहुत् यज्ञ से ऋचायें तथा साम उत्पन्न हुये, उससे (गायत्र्यादि) छन्द उत्पन्न हुये, उससे यजुष् उत्पन्न हुआ।

व्याकरण – **जज्ञिरे** = यज् धातु, लिट् लकार, प्रथम पुरुष, बहुवचन।

विशेष – यहाँ ऋक् का अर्थ मूर्तिमान् आकार, यजुष् का अर्थ गतिमान्, साम का अर्थ आकार की सीमा तथा छन्दांसि का अर्थ सृष्टि का प्रत्येक पदार्थ है।

तस्मादश्वा अजायन्त ये केचोभयादतः।
गावो ह जज्ञिरे तस्मात्तस्माज्जाता अजावयः।।10।।

अन्वय – तस्मात् अश्वाः ये के च उभयादतः अजायन्त, तस्मात् ह गावः जज्ञिरे, तस्मात् अजावयः जाताः।

शब्दार्थ – तस्मात् = उस सर्वहुत् यज्ञ से, अश्वाः = घोड़े, अजायन्त = उत्पन्न हुये, ये = जो, के = कोई, च = और, उभयादतः = दोनों तरफ दांत वाले, गावः = गायें, ह = निश्चित अर्थ का वाचक निपात, जज्ञिरे = उत्पन्न हुई, तस्मात् = उससे, जाताः = उत्पन्न हुई, अजावयः = बकरियाँ तथा भेड़ें।

अनुवाद – उस (सर्वहुत् यज्ञ) से अश्व उत्पन्न हुये तथा वे सभी जो दोनों तरफ दांतवाले हैं। उससे गायें उत्पन्न हुईं, उससे बकरियाँ तथा भेड़ें (पैदा हुईं)।

व्याकरण – **अजायन्त** = प्रादुर्भावार्थ जन् धातु से आत्मनेपद, प्रथम पुरुष, बहुवचन।

विशेष – प्रकृत मन्त्र में अर्थवाद के माध्यम से विषय की प्रस्तुति की गई है।

यत्पुरुषं व्यदधुः कतिधा व्यकल्पयन्।
मुखं किमस्य कौ बाहू का ऊरू पादा उच्येते।।11।।

अन्वय – (देवाः) यत् पुरुषं वि अदधुः कतिधा वि अकल्पयन्? अस्य मुखं किम्? कौ बाहू? का ऊरू? (कौ) पादौ उच्यते?

शब्दार्थ – यत् = जब, पुरुषम् = परम पुरुष को, वि अदधुः = विभक्त किया, कतिधा = कितने भागों में, वि अकल्पयन् = विभाजन किया, मुखम् = मुख, किम् = क्या था, अस्य = उसका, कौ = कौन, बाहू = दो भुजायें थीं, कौ = कौन, ऊरू = दोनों जंघायें, पादौ = दोनों पैर, उच्येते = कहे जाते हैं।

अनुवाद – जब (देवताओं ने) पुरुष को विभक्त किया (उस समय उसके) कितने भाग किये? उसका मुख क्या था? (उसकी) दोनों भुजायें क्या थीं? (उसकी) दोनों जंघायें क्या थीं? (उसके) दोनों पैर क्या कहे जाते हैं?

व्याकरण – **व्यदधुः** = वि उपसर्ग धारणार्थ धा धातु से लङ् लकार, प्रथम पुरुष, बहुवचन।

विशेष – **ऊरू**= ऊकार, द्विवचनान्त होने से प्रगृह्य संज्ञक है, अतएव पदपाठ में इतिकरण।

ब्राह्मणोऽस्य मुखमासीद् बाहू राजन्यः कृतः।
ऊरू तदस्य यद्वैश्यः पद्भ्यां शूद्रो अजायत।।12।।

अन्वय – अस्य मुखं ब्राह्मणः आसीत्, राजन्यः बाहू कृतः, यत् वैश्यः तत् अस्य ऊरू, शूद्रः पद्भ्याम् अजायत।

शब्दार्थ – ब्राह्मणः = ब्राह्मण, अस्य = उसका, मुखम् = मुख, आसीत् = था, बाहू = दोनों भुजाओं से, राजन्यः = क्षत्रिय, कृतः = बना, ऊरू = दोनो जंघायें, तत् = उनसे, उसकी, यत् = जो थीं, वैश्यः = वैश्य, पद्भ्याम् = दोनों पैरों से, शूद्रः = शूद्र, अजायत = उत्पन्न हुआ।

अनुवाद – ब्राह्मण उसका मुख था, दोनों भुजाओं से क्षत्रिय हुआ, उसकी जो जंघाये थीं उनसे वैश्य हुआ, (उसके) दोनों पैरों से शूद्र उत्पन्न हुआ।

व्याकरण – राजन्यः = क्षत्रिय जाति विशिष्ट।

विशेष – स मुखतस्त्रिवृतं निरमिमीत मुखादि से ब्राह्मणादि का सन्दर्भ तैत्तिरीय संहिता (7.1.1.4) में भी प्राप्त होता है।

चन्द्रमा मनसो जातश्चक्षोः सूर्यो अजायत।
मुखादिन्द्रश्चाग्निश्च प्राणाद्वायुरजायत।।13।।

अन्वय – मनसः चन्द्रमा जातः, चक्षोः सूर्यः अजायत, मुखादिन्द्रश्च अग्निश्च प्राणाद् वायुः अजायत।

शब्दार्थ – चन्द्रमाः = चन्द्रमा, मनसः = मन से, जातः = उत्पन्न हुआ, चक्षोः = आँख से, सूर्यः = सूर्य, अजायत = उत्पन्न हुआ, मुखात् = मुख से, इन्द्रः = इन्द्र, च = और, अग्निः = अग्नि, च = और, प्राणात् = प्राण से, वायुः = हवा, अजायत = उत्पन्न हुआ।

अनुवाद – (उस पुरुष के) मन से चन्द्रमा उत्पन्न हुआ, (उसकी) आँख से सूर्य उत्पन्न हुआ। (उसके) मुख से इन्द्र और अग्नि (उत्पन्न हुये), (उसकी) श्वास से वायु उत्पन्न हुआ।

व्याकरण – चन्द्रमाः = चन्द्रमस् शब्द हलन्त पुंल्लिंग प्रथमा विभक्ति एकवचन।

विशेष – प्रजापति के मन से चन्द्रमा की सृष्टि का उल्लेख प्राप्त होता है।

नाभ्या आसीदन्तरिक्षं शीर्ष्णो द्यौः समवर्तत।
पद्भ्यां भूमिर्दिशः श्रोत्रात्तथा लोकाँ अकल्पयन्।।14।।

अन्वय – नाभ्याः अन्तरिक्षम् आसीत्, शीर्ष्णः द्यौः सम् अवर्तत, पद्भ्यां भूमिः, श्रोत्रात् दिशः तथा लोकान् अकल्पयन्।

शब्दार्थ – नाभ्याः = नाभि से, आसीत् = उत्पन्न हुआ था, अन्तरिक्षम् = अन्तरिक्षलोक, शीर्ष्णः = शिर से, द्यौः = द्युलोक, समवर्तत = उत्पन्न हुआ, पद्भ्याम् = दोनों पैरों से, भूमिः = पृथिवी, दिशः = दिशायें, श्रोत्रात् = कान से, लोकान् =लोकों की, अकल्पयन् = सृष्टि की।

अनुवाद – (उसकी) नाभि से अन्तरिक्ष (उत्पन्न हुआ) था, शिर से आकाश उत्पन्न हुआ, दोनों पैरों से पृथिवी, कान से दिशायें। इसी प्रकार सभी लोकों की सृष्टि (देवताओं ने) की।

व्याकरण – दिशः = दिक् शब्द हलन्त स्त्रीलिंग, प्रथमा विभक्ति, बहुवचन।

विशेष – सम्पूर्ण लोक सर्वहुत् विराट् पुरुष का ही रूप है।

सप्तास्यासन् परिधयस्त्रिः सप्त समिधः कृताः।
देवा यद्यज्ञं तन्वाना अबध्नन् पुरुषं पशुम्।।15।।

अन्वय – अस्य (यज्ञस्य) सप्त परिधयः आसन्, त्रिः सप्त समिधः कृताः, यत् यज्ञं तन्वानाः देवाः पुरुषं पशुम् अबध्नन्।

शब्दार्थ – सप्त = सात, अस्य = उसकी, आसन् = थीं, परिधयः = परिधियाँ, त्रिः सप्त = इक्कीस, समिधः = समिधायें, कृताः = बनाई गईं थीं, देवाः = देवताओं ने, यत् = जिस समय, यज्ञम् = यज्ञ, तन्वानाः = सम्पन्न करते हुये, अबध्नन् = बांधा था, पुरुषम् = परम पुरुष को, पशुम् = पशु के रूप में।

अनुवाद – उसकी सात परिधियाँ थीं इक्कीस समिधायें बनाई गई थीं, जिस समय यज्ञ करते हुये देवताओं ने पुरुष पशु को बाँधा था।

व्याकरण – अबध्नन् = बध् धातु, लङ् लकार, प्रथम पुरुष, बहुवचन।

विशेष – संवत्सर के 12 महीने, 5 ऋतुयें, 3 लोक तथा 1 आदित्य ये ही यज्ञ की 21 समिधायें हैं।

यज्ञेन यज्ञमयजन्त देवास् तानि धर्माणि प्रथमान्यासन्।
ते ह नाकं महिमानः सचन्त यत्र पूर्वे साध्याः सन्ति देवाः।।16।।

अन्वय – देवाः यज्ञेन यज्ञम् अयजन्त। तानि प्रथमानि धर्माणि आसन्। ते ह महिमानः नाकं सचन्त यत्र पूर्वे साध्याः देवाः (च) सन्ति।

शब्दार्थ – यज्ञेन = यज्ञ से, यज्ञम् = यज्ञ पुरुष का, अयजन्त = पूजन किया, देवाः = देवताओं ने, तानि = वे ही, धर्माणि = धर्म, प्रथमानि = सर्वप्रथम, आसन् = थे, ते = उन लोगों ने, ह = निश्चित अर्थ का वाचक एक निपात, नाकम् = स्वर्ग, महिमानः = पूजने वाले, सचन्त = प्राप्त किये, यत्र = जहाँ पर, पूर्वे = पुराने, साध्याः = प्रजापति आदि सृष्टि कर्ताओं का वर्ग, सन्ति = वास करते है, देवाः = देवता।

अनुवाद – यज्ञ से देवताओं ने यज्ञपुरुष का पूजन किया, वे ही सर्वप्रथम धर्म थे। वे पूजने वाले स्वर्ग को प्राप्त किये जहाँ पर सृष्टि करने में समर्थ प्रजापति आदि पुराने देवताओं का वर्ग तथा देवगण वास करते हैं।

व्याकरण – अयजन्त = यज् धातु आत्मनेपद, लङ् लकार, प्रथम पुरुष, बहुवचन।

विशेष – प्रकृत मन्त्र की व्याख्या में आचार्य वाधूल ने **तानि धर्माणि** की व्याख्या में स्पष्ट किया कि ब्रह्माण्ड को धारण करने वाले आठ तत्त्व–पृथिवी, अन्तरिक्ष, द्युलोक तथा महः लोक तथा इन चार लोकों के अधिष्ठात्री देवता अग्नि, वायु, आदित्य और वरुण हैं। ये ही आठ मन्त्र में महिमानः कहे गये है।

11.4 मरुत्(ऋग्वेद 1.85)

ऋषि – गौतम, देवता – मरुत्।

प्र ये शुम्भन्ते जनयो न सप्तयो यामन्रुद्रस्यसूनवः सुदंससः।
रोदसी हि मरुतश्चक्रिरे वृधे मदन्ति वीरा विदथेषु घृष्वयः।।1।।

अन्वय – ये यामन् जनयो न शुम्भन्ते, (ते) सप्तयः, रुद्रस्य सूनवः सुदंससः (च सन्ति)। मरुतः रोदसी हि वृधे चक्रिरे, (ते) घृष्वयः वीराः विदथेषु मदन्ति।

शब्दार्थ – ये = जो मरुत् नाम के देवता, यामन् = गमन काल में, प्रशुम्भन्ते = अत्यधिक अपने अंगों को अलंकृत करते हैं स्त्रियों की तरह, ते = वे, सप्तयः = सर्पणशील, धावक, यामन् = गमन में निमित्तभूत, रुद्रस्य = रुद्र के, सूनवः = पुत्र, सुदंससः = शोभनकर्म वाले, सन्ति = हैं, मरुतः = मरुद्गण, रोदसी = द्यु और पृथिवी लोक जिससे प्रगत हो बढ़ें, वृष्टि आदि के द्वारा वैसा किया, ते = वे (क्षेपणशील तथा वीर हैं), घृष्वयः = वे घर्षणशील हैं, पर्वतादि के भंजक है, इस प्रकार, विदथेषु = यज्ञों में, मदन्ति = सोमपान करके प्रसन्न होते हैं।

अनुवाद – (ये) जो मरुद्गण बाहर जाने के लिए स्त्रीवत् अपने को प्रकृष्टरूप से शोभायुक्त कर लेते है, वे सर्पणशील/निष्ठावान् रुद्र के पुत्र तथा सुन्दर/विलक्षण कर्म वाले हैं। मरुतों ने स्वर्ग तथा पृथिवी को (वृष्टि के द्वारा) विस्तारार्थ निर्मित किया है, अतः वे घर्षणशील, ध्वंसक वीरगण हमारे यज्ञों में प्रफुल्लित होते हैं।

व्याकरण – **शुम्भन्ते** = दीप्त्यर्थक शुम्भ् धातु, लट् लकार, प्रथम पुरुष बहुवचन, **सप्तयः** = षप् समवाये, धातु से क्तिच् प्रत्यय सप्तिः प्रथमा बहुवचन में रूप होता है।

विशेष – वर्षाकारक मरुद्गणों के वैशिष्ट्य का वर्णन किया गया है।

त उक्षितासो महिमानमाशत दिवि रुद्रासो अधि चक्रिरे सदः।
अर्चन्तो अर्कं जनयन्त इन्द्रियमधि श्रियो दधिरे पृश्निमातरः।।2।।

अन्वय – उक्षितासः ते महिमानम् आशत। रुद्रासः दिविसदः अधि चक्रिरे। अर्कम् अर्चन्तः इन्द्रियं जनयन्तः पृश्निमातरः श्रियः अधिदधिरे।

शब्दार्थ – उक्षितासः = देवताओं के द्वारा अभिषिक्त, ते = वे मरुद्गण, महिमानम् = महत्त्व को, आशत = प्राप्त किये, रुद्रासः = रुद्र के पुत्र, दिविसदः = द्युलोक में अपना स्थान बनाया, अधिचक्रिरे = सर्वोत्कृष्ट किया/श्रेष्ठ पद प्राप्त किया, अर्कम् = इन्द्र को, अर्चन्तः = पूजते हुए, इन्द्रियम् = इन्द्र के प्रभाव को पैदा करते हुए, पृश्निमातरः = नानारूपा भूमि, श्रियः = ऐश्वर्य को, अधिदधिरे = धारण करते हुए।

अनुवाद – (देवताओं के द्वारा) अभिषिक्त हो जाने पर मरुत महत्त्वशाली हो गये। रुद्र के पुत्रों ने प्रकाशयुक्त आकाश में अपना स्थान प्राप्त कर लिया। अर्चनीय इन्द्र की अर्चना करते हुए तथा इन्द्र की विशिष्ट शक्ति को उत्पन्न करते हुए पृश्नि (पृथ्वीमाता के इन पुत्रों ने अर्थात् मरुतों) ने ऐश्वर्यों को अधिकार के साथ धारण कर लिया है।

व्याकरण – **पृश्निमातरः** = पृश्नि नानारूपा भूमि, वह माता है जिसकी वे।

विशेष – मरुद्गणों के कर्म तथा प्रभाव का वर्णन किया गया है।

गोमातरो यच्छुभयन्ते अञ्जिभिस् तनूषु शुभ्रा दधिरे विरुक्मतः।
बाधन्ते विश्वमभिमातिनमप वर्त्मान्येषामनु रीयते घृतम्।।3।।

अन्वय – यद् गोमातरः अञ्जिभिः शुभयन्ते (तदा) शुभ्राः (मरुतः) तनूषु विरुक्मतो दधिरे। (मरुतः) विश्वम् अभिमातिनम् अप बाधन्ते। एषाम् वर्त्मानि अनु घृतं रीयते।

शब्दार्थ – यद् = जो, गोमातरः = गोरूपा भूमि माता है जिनकी वे मरुद्गण, अंजिभिः = रूपाभिव्यंजक आभरणों के द्वारा, शुभयन्ते = अपने अंगों को शोभायुक्त करते हैं, शुभ्राः = दीप्त, तनूषु = शरीरों में, विरुक्मन्तः = विशेष रूप से शोभायमान अलंकारों को, दधिरे = धारण करते हैं, मरुतः = मरुद्गण, विश्वं = सभी, अभिमातिनं = शत्रुओं को, अप बाधन्ते = मारते हैं, एषां = इन मरुतों के ,वर्त्मानि = मार्ग में, घृतम् = क्षरणशील जल घृत की तरह क्षरणशील वृष्टिजल, रीयते = स्रवित होता है।

वाक् (10.125), पुरुष (10.90), मरुत्(1.85), अभय (6.40)

अनुवाद – जिस समय गोरूप पृथ्वीमाता के ये पुत्ररूप को प्रकाशित करने वाले आभरणों से अपने को शोभायुक्त करते हैं, (उस समय) शोभायुक्त/दीप्तिमान् (ये मरुद्गण) अपने शरीरों पर विशेष रूप से चमकने वाले (आभरण/शस्त्रों को) धारण कर लेते हैं। वे सभी, प्रत्येक सामने आये हुए शत्रु को मार/भगा देते हैं। इन मरुतों के मार्गों पर पीछे-पीछे वृष्टिजल, घृतसम पुष्टिकर जल प्रवाहित होता है।

व्याकरण – **शुभयन्ते** = शुभ् धातु से णिच् प्रत्यय, लट् लकार, प्रथम पुरुष, बहुवचन, **अंजिभिः** = अञ्ज् धातु से इञ् प्रत्यय अंजिः, तृतीया विभक्ति, बहुवचन।

विशेष – मरुतों के सहयोग से वृष्टि होती है, इसका आलंकारिक चित्रण है।

वि ये भ्राजन्ते सुमखास ऋष्टिभिः प्रच्यावयन्तो अच्युता चिदोजसा।
मनोजुवो यन्मरुतो रथेष्वा वृषव्रातासः पृषतीरयुग्ध्वम्।।4।।

अन्वय – सुमखासः ये ऋष्टिभिः विभ्राजन्ते, (ते) अच्युता चित्, ओजसा प्रच्यावयन्तः (मरुतः सन्ति)। (हे) मरुतः, मनोजुवः वृषव्रातासः (सन्तः यूयम्) यत् रथेषु पृषतीः आ अयुग्ध्वम्।

शब्दार्थ – सुमखासः = शोभन यज्ञ वाले, ये = जो देवगण, ऋष्टिभिः = आयुध विशेष के द्वारा, विभ्राजन्ते = विशेष रूप से शोभायमान होते हैं, अच्युता = नष्ट करने में असमर्थ पर्वतादि, चित् = निपात, ओजसा = स्वकीय बल के द्वारा, प्रच्यावयन्तः = प्रेरक होते हैं, मनोजुवः = मन की तरह तीव्र गति वाले, वृषव्रातासः = वृष्टि कराने वाले, यत् रथेषु = जो रथों में, पृषतीः = श्वेत बिन्दुओं से युक्त, आ अयुग्ध्वम् = सामने से नियुक्त।

अनुवाद – उत्तम यज्ञों से युक्त, अच्छे वीर स्वरूप जो देवगण अपनी बर्छियों/विशिष्ट आयुधों के कारण विशेषतया दीप्त होते हैं, वे न हिलने वाले पदार्थों को (पर्वतादि) भी अपनी शक्ति से अच्छी तरह हिला देने वाले (मरुद्गण) हैं। हे मरुद्गण, मन के समान तीव्र गति वाले (होकर आप सभी) जब अपने रथों में श्वेत बिन्दुओं से युक्त हरिणियों को जोत लेते हैं (तभी पर्वतादि हिल उठते हैं)।

व्याकरण – **सुमखासः** = सुमुख प्रथमा बहुवचन का वैदिक रूप।

विशेष – मरुद्गणों की विशेषताओं का चित्रण किया गया है।

प्र यद्रथेषु पृषतीरयुग्ध्वं वाजे अद्रिं मरुतो रंहयन्तः।
उतारुषस्यवि ष्यन्ति धाराश्चर्मेवोदभिर्व्युन्दन्ति भूम।।5।।

अन्वय – (हे) मरुतः, यद् रथेषु पृषतीः प्र अयुग्ध्वम् (तथा) वाजे अद्रिं रंहयन्तः (भवथ) उत अरुषस्य धाराः विष्यन्ति, चर्म इव भूम उदभिः वि उन्दन्ति।

शब्दार्थ – मरुतः = मरुतों, यद् = जो, रथेषु = रथों में, पृषतीः = श्वेतबिन्दुयुक्ता मृगी, अयुग्ध्वम् = योजित किये, वाजे = अन्न में, अद्रिं = मेघ को, रंहयन्तः = वर्षा हेतु प्रेरित करते हुए, अरुषस्य = सूर्य की, धाराः = धारा, विष्यन्ति = विमुक्त करते हैं, चर्म इव भूम = चर्म के समान आर्द्र भूमि, उदभिः = जल के द्वारा, व्युन्दन्ति = विशेष रूप से गीला करते हैं।

अनुवाद – हे मरुद् गण, जिस समय अपने रथों में श्वेत बिन्दुओं से युक्त हिरणियों को आप सब अच्छी तरह जोत लेते हैं तथा अन्नप्राप्त्यर्थ/युद्ध में मेघ को, इन्द्र के वज्र को प्रेरित करते हुये, गति प्रदान करते हुये (अवस्थित रहते हैं) उसी समय सूर्य/विद्युत् के पास से, अरुण वर्ण के अश्व की धाराएं बरसने लगती हैं और (वे धाराएं) गीले चर्म के समान जल से सारी पृथ्वी को आर्द्र कर देती है।

व्याकरण – **उन्दन्ति** = लट् लकार, प्रथम पुरुष बहुवचन।

विशेष – वर्षा में मरुतों के कर्मसाहचर्य का वर्णन किया गया है।

आ वो वहन्तु सप्तयो रघुष्यदो रघुपत्वानः प्र जिगात बाहुभिः।
सीदता बर्हिरुरु वः सदस्कृतं मादयध्वं मरुतो मध्वो अन्धसः।।6।।

अन्वय – (हे) मरुतः, रघुष्यदः सप्तयः वः आवहन्तु। रघुपत्वानः (यूयं) बाहुभिः प्रजिगात। बर्हिः आसीदत, वः उरुसदः कृतम्। मध्वः अन्धसः मादयध्वम्।

शब्दार्थ – हे मरुतः = हे मरुद्गण, रघुष्यदः = वेगपूर्वक जाते हुए, सप्तयः = सर्पणशील, वः = तुम सबको, आवहन्तु = बुलावे, रघुपत्वानः = शीघ्रतापूर्वक जाते हुए, बाहुभिः = आपके बाहुओं द्वारा, प्रजिगात = प्रकर्षपूर्वक जायें, बर्हिः = कुशासन, आसीदत = बैठे, वः = तुम सब, उरुसदः = विस्तीर्ण उपवेशन स्थान (वेदि), कृतम् = बनाया/किया, मध्वः = मधुर, अन्धसः मादयध्वम् = सोमपान तृप्त करें।

अनुवाद – हे मरुतों, तीव्रगति से चलने वाले घोड़े आप लोगों को यहाँ यज्ञ में प्राप्त करावे। बहुत शीघ्रता से चलने वाले (आप सब) अपनी भुजाओं के द्वारा हाथों में (हमारे लिए प्रदेय धन को लेकर) शीघ्रता से चलिये। इस कुशासन पर आप लोग बैठ जाइये, आपके लिये बहुत विशाल आसन/स्थान/वेदि निर्मित है। मधुर सोमरस (के पान) से आनन्दित होवें।

व्याकरण – **रघुष्यदः** = रघु लघु स्यन्दन अर्थ में, **जिगात** = गा धातु से लोट् लकार में मध्यम पुरुष, एकवचन।

विशेष – मरुद्गणों के यज्ञस्थल पर आने का उल्लेख प्राप्त होता है।

तेऽवर्धन्त स्वतवसो महित्वना नाकं तस्थुरुरु चक्रिरे सदः।
विष्णुर्यद्धावृद् वृषणं मदच्युतं वयो न सीदन्नधि बर्हिषि प्रिये।।7।।

अन्वय – स्वतवसः ते (मरुतः) अवर्धन्त, महित्वना नाकम् आ तस्थुः, उरु सदः (च) चक्रिरे। यद् वृषणं मदच्युतम् (इन्द्रम्) विष्णुः ह आवत्, (तदा मरुतः) वयः न प्रिये बर्हिषि अधि सीदन्।

शब्दार्थ – स्वतवसः = केवल अपने ही बल पर आश्रित, ते = वे, अवर्धन्त = बढ़ गये, महित्वना = स्वकीय महत्त्व से, नाकं = स्वर्ग, आतस्थुः = प्राप्त किया, उरू सदः = विस्तीर्ण आसन, चक्रिरे = बनाया, यद् = जो, वृषणम् = कामाभिवर्षक, मदच्युतम् =

वाक् (10.125), पुरुष (10.90), मरुत्(1.85), अभय (6.40)

हर्ष के वर्द्धक यज्ञ को, विष्णुः = विष्णु देवता, ह आवत् = रक्षा करता है, वयः = पक्षियों के, न = हमारे, प्रिये = बर्हिषि कुशासन, सीदन् = बैठें।

अनुवाद – केवल अपने ही बल पर आश्रित रहने वाले वे मरुद्गण बढ़ गये हैं, अपनी महिमा से उन्होंने स्वर्ग पर अधिकार प्राप्त कर लिया है, (और उन्होंने) विशाल आसन/स्थान बना लिया है। जिस समय कामनाओं के पूरक/बलवान् आनन्द प्रदान करने वाले यज्ञ की, सोम के मद से गिरने वाले इन्द्र की विष्णु देवता ने रक्षा की थी (तब मरुद्गण) पक्षियों के समान अपने प्रिय कुशासन पर बैठे हुए थे, आकर बैठें।

व्याकरण – **महित्वना** = पूर्जार्थ में मह् धातु से इन् प्रत्यय, तथा भाव में त्व प्रत्यय करने से तृतीया एकवचन का रूप।

विशेष – मरुद्गणों के प्रभाव का चित्रण किया गया है।

शूरा इवेद् युयुधयो न जग्मयः श्रवस्यवो न पृतनासु येतिरे।
भयन्ते विश्वा भुवना मरुद्भयो राजान इव त्वेषसंदृशो नरः।।8।।

अन्वय – शूराः इव इत् युयुधयः न जग्मयः (मरुतः) श्रवस्यवः न पृतनासु येतिरे। विश्वा भुवना (तेभ्यः) मरुद्भ्यः भयन्ते, (ये) नरः राजानः इव त्वेषसंदृशः(सन्ति)।

शब्दार्थ – शूरा इव = वीरों की तरह, इत् = समुच्चयार्थक निपात, युयुधयः = युद्ध करने की इच्छा रखने वाले पुरुषों की भाँति, न = निषेधार्थक, जग्मयः = शीघ्रगामी वायु, श्रवस्यवः = अन्न एवं अन्न को चाहने वाले पुरुषों की तरह, पृतनासु = युद्धों में, येतिरे = प्रयत्न करते हैं, विश्वा = सभी लोग, भुवनाः = लोक, मरुद्भ्यः भयन्ते = मरुतों से भी भय खाते हैं, ये नरः = जो मनुष्य, राजान इव = राजाओं की तरह, अत्यधिक तेजस्वी रूप वाले हैं।

अनुवाद – शौर्य से भरे पुरुषों के समान तथा युद्ध के इच्छुक जनों के समान शीघ्र गमन करने वाले (मरुद्गण) अन्न/कीर्ति चाहनेवाले लोगों के समानसंग्रामों में प्रयत्न करते हैं। सभी लोक उन मरुतों से भयाक्रान्त रहते हैं, जो वृष्टि लानेवालेहैं तथा राजाओं के समान अत्यधिक भास्वर रूप वाले हैं (जिससे उन्हें देखा नहींजा सकता)।

व्याकरण – **युयुधयः** = युध् सम्प्रहारे धातु से लिट् स्थान में किन् प्रत्यय प्रथमा बहुवचन का रूप, **श्रवस्यवः** = श्रवः अन्न का नाम है, अन्नमात्मनः इच्छन्ति इति श्रवस्यवः।

विशेष – मरुतों का निर्देश वीर पुरुषों की तरह किया गया है।

त्वष्टा यद्वज्रं सुकृतं हिरण्ययं सहस्रभृष्टिं स्वपा अवर्तयत्।
धत्ते इन्द्रो नर्यपांसि कर्तवेऽहन् वृत्रं निरपामौब्जदर्णवम्।।9।।

अन्वय – स्वपाः त्वष्टा यत् सुकृतं हिरण्ययं सहस्रभृष्टिं वज्रम् अवर्तयत् (तदा) इन्द्रः (तं) नरि अपांसि कर्तवे धत्ते, वृत्रम् अर्णवम् अहन्, अपाम् निः औब्जत्।

शब्दार्थ – स्वपाः = शोभन कर्म करने वाले, त्वष्टा = विश्वकर्मा, यत् = जो, सुकृतं = सम्यक्तया सम्पादित, हिरण्ययम् = सुवर्णमय, सहस्रभृष्टिम् = अनेक धाराओं से युक्त, वज्र = जो वज्र, अवर्तयत = इन्द्र की ओर आया, नरि अपांसि = शत्रुमारण कर्म, कर्तवे = करने के लिए, धत्ते = धारण करता है, वृत्रम् = वृत्र को, अर्णवम् =

उदकयुक्त मेघ को, अहन् = वध किया, अपाम् = जल को, निः औब्जत् = मुक्त कराया/खोल दिया।

अनुवाद – सुन्दर कार्य करने वाले, कुशल शिल्पी त्वष्टा अर्थात् विश्वकर्मा ने जब अच्छी तरह बने हुए स्वर्णमय, सहस्र धारों/नोकों से युक्त वज्र को प्रेरित किया (अर्थात् इन्द्र को वज्र बनाकर दिया) तब इन्द्र ने उसे संग्राम में शत्रुनाशादि कार्यों को करने के लिए धारण किया। उन्होंने वृष्टिजल को रोकने वाले मेघ को मारा तथा जल के प्रवाह को पूर्णरूप से खोल दिया।

व्याकरण – **नरि** = संग्रामे यह नृ शब्द से संग्राम कहा गया है, **सहस्रभृष्टिः** = सहस्रं भृष्टयो धाराः यस्मिन् सः।

विशेष – इन्द्र के वज्र का चित्रण किया गया है।

ऊर्ध्वं नुनद्रेऽवतं ते ओजसा दादृहाणं चिद् बिभिदुर्वि पर्वतम्।
धमन्तो वाणं मरुतः सुदानवो मदे सोमस्य रण्यानि चक्रिरे।।10।।

अन्वय – ते (मरुतः) अवतम् ओजसा ऊर्ध्वं नुनुद्रे, (तथा) दादृहाणं पर्वतं चिद् विबिभिदुः। सुदानवः मरुतः वाणं धमन्तः सोमस्य मदे रण्यानि चक्रिरे।

शब्दार्थ – ते = वे, अवतम् = कूप, ओजसा = बल के द्वारा, ऊर्ध्वं = ऊपर, नुनुद्रे = प्रेरित किया/खोदा गया, दादृहाणं = गतिरोध वाले, पर्वतं = पर्व वाले उच्च पत्थर को भी, चिद् विबिभिदुः = खण्डित किया, सुदानवः = शोभन दानयुक्त, ते मरुतः = वे मरुद्गण, वाणं = वीणा को, धमन्तः = बजाते हुए, सोमस्य = सोमरस के, मदे =मद में, रण्यानि = सुन्दर कार्यों को, चक्रिरे = किया/सम्पन्न किया।

अनुवाद – उन मरुद्देवताओं ने जलपूर्ण कूप को अपने बल से ऊपर की ओर प्रेरित किया/उठाया (तथा) अत्यन्त दृढ़ (गतिरोधक) पर्वत/पाषाण-समूह को भी अच्छी तरह तोड़ दिया। पर्याप्त दान करने वाले उदार मरुतों ने बाँसुरी/वीणा को फूँकते/बजाते हुए सोमरस के मद/नशे में रमणीय कार्यों को किया/रमणीय धनों का प्रदान किया।

व्याकरण – **युयुधयः** = सम्प्रहारार्थक युध् धातु से लिट् के स्थान में किन् प्रत्यय, प्रथमा विभक्ति बहुवचन, **येतिरे** = यती प्रयत्ने धातु से लिट् लकार, प्रथम पुरुष, बहुवचन।

विशेष – मरुतों के पराक्रम का सटीक वर्णन प्राप्त होता है।

जिह्मं नुनुद्रेऽवतं तया दिशा सिञ्चन्नुत्सं गोतमाय तृष्णजे।
आ गच्छन्तीमवसा चित्रभानवः कामं विप्रस्य तर्पयन्त धामभिः।।11।।

अन्वय – (मरुतः) अवतं तया दिशा जिह्मं नुनुद्रे, (तथा) तृष्णजे गोतमाय उत्सम् असिञ्चन्। चित्रभानवः (मरुतः) ईम् अवसा आगच्छन्ति, धामभिः विप्रस्य कामं तर्पयन्त।

शब्दार्थ – मरुतः = मरुतों ने, अवतम् = कूप को, तया दिशा = उसी दिशा में, जिह्मं नुनुद्रे = तिर्यक् वक्र प्रेरित किया, तृष्णजे = प्यासे, गोतमाय = गोतम के लिए, उत्सं असिञ्चन् = जल प्रवाह को कूप के पास लाये, चित्रभानवः = विचित्र दीप्तियां, ईम् = इसको, अवसा = रक्षण के द्वारा, आगच्छन्ति = आते हैं, धामभिः = आयुदायक जल द्वारा, विप्रस्य = विप्र का, कामं = यथेच्छ, तर्पयन्तः = तृप्त किया।

अनुवाद – (मरुद्गणों ने) कूप को उसी दिशा में तिरछा करके प्रेरित किया अर्थात् बढ़ा दिया (तथा) प्यास से व्याकुल गोतम ऋषि के लिए जलप्रवाह/गड्डे को बहाया/भर दिया। सुन्दर कान्ति वाले (मरुद्गण) उस ऋषि के पास रक्षा/सहायता के साथ आते हैं तथा अपनी शक्तियों से, आयुष्य प्रदान करने वाले जलों से मेधावी गोतम की कामना को तृप्त कर चुके हैं।

व्याकरण – **नुनुद्रे** = णुद् प्रेरणे धातु से लिट् लकार प्रथम पुरुष बहुवचन का रूप, **चित्रभानवः** = चित्रा विविधाः भानवः किरणाः येषां ते चित्रभानवः, बहुव्रीहि समास।

विशेष – मरुद्गणों द्वारा कूप से जल निकालने का वर्णन है।

या वः शर्म शशमानाय सन्ति त्रिधातूनि दाशुषे यच्छताधि।
अस्मभ्यं तानि मरुतो वि यन्त रयिं नो धत्त वृषणः सुवीरम्।।12।।

अन्वय – (हे) मरुतः, वः या (यानि) शर्म (शर्माणि) त्रिधातूनि शशमानाय (दातव्यानि) सन्ति, (यूयं तानि) दाशुषे अधियच्छत, तानि अस्मभ्यं वि यन्त। (हे) वृषणः, नः सुवीरं रयिं धत्त।

शब्दार्थ – हे मरुतः = हे मरुद्गण, वः = तुम्हारे से सम्बद्ध, यानि = जो, शर्म = सुख या गृह, त्रिधातु = पृथिवी आदि तीन स्थानों में अवस्थित, शशमानाय = स्तुति वचनों द्वारा, दातुं = देने के लिए, सन्ति = हैं, तानि = उनको, दाशुषे = देने हेतु, अधियच्छत = दो, तानि = उन्हें, अस्मभ्यं = हमारे लिए, वि यन्त = दो, हे वृषणः = कामनाओं के पूरक, नः = हमें, सुवीरं = वीर पुत्रादि सहित, रयिम् = धन, धत्त = दो।

अनुवाद – हे मरुतों, तुम लोगों के जो-जो सुख/गृह पृथ्वी आदि तीनों स्थानों पर अवस्थित एवं तुम्हारी स्तुति करने वाले यजमान को (देने के लिए) बने हुए हैं (तुम लोग उन सुखों/गृहों को) हव्य प्रदान करने वाले यजमान को अधिकमेंप्रदान करो। उन सुखों को हम लोगों को भी विशेषतया सेप्रदान करो। कामनाओं की पूर्ति करने वाले हे मरुद्गण, हम लोगों को अच्छे-अच्छे वीर पुत्र-पौत्रों से सम्पन्न धन–सम्पत्ति प्रदान करो।

व्याकरण – **शशमानाय** = शश धातु से तच्छील्य अर्थ में चानशि करने पर चतुर्थी एकवचन का रूप, **सुवीराः** = शोभनाः वीराः यस्मिन् तत् तादृशम् इति बहुव्रीहि समास।

विशेष – मरुद्गण स्तुति करने वालों की कामनाओं को पूर्ण करते हैं, यह मन्त्र का वर्ण्य-विषय है।

11.5 अभय (अथर्ववेद 6.40)

ऋषि – अथर्वा (अभयकाम – 1-2मन्त्र), अथर्वा (स्वस्त्ययनकाम – 3 मन्त्र)
देवता – मन्त्रोक्ता (1-2 मन्त्र), इन्द्र (3 मन्त्र)।

अभयं द्यावापृथिवी इहास्तु नोभयं सोमः सविता नः कृणोतु।
अभयं नोऽस्तुर्वन्तरिक्षं सप्तऋषीणां च हविषाभयं नो अस्तु।।1।।

अन्वय – हे द्यावापृथिवी, इह नः अभयम् अस्तु। सोमः सविता नः अभयं कृणोतु। (तथा) उरु अन्तरिक्षं नः अभयम् अस्तु। सप्तऋषीणां हविषा नः अभयम् अस्तु।

शब्दार्थ – हे द्यावापृथिवी = हे द्युलोक और पृथिवी लोक (तुम दोनों की कृपा से), इह = इस देश में, नः = हम, अभयम् = भयरहित, अस्तु = हों, सोमः = चन्द्र, सविता = सूर्य, नः = हमको, अभयं = निर्भय, कृणोतु = करें (तथा द्युलोक और पृथिवी लोक के मध्य विद्यमान), उरु = विशाल, अन्तरिक्षं = आकाश, नः = हमारे लिये, अभयम् = भयरहित, अस्तु = हो, सप्त ऋषीणां = विश्वामित्रादि सात ऋषियों सम्बन्धी, हविषा = दीयमान हवि के द्वारा, नः = हमें, अभयम् = अभय, अस्तु = हो।

अनुवाद – हे द्युलोक और पृथिवी लोक, आप दोनों की कृपा से इस देश में हम निर्भय हों, चन्द्र और सूर्य हमें निर्भय बनायें। द्युलोक और पृथिवी लोक के मध्य विद्यमान विस्तृत आकाश हमारे लिए भय रहित हो। विश्वामित्र आदि सप्त ऋषियों को हमारे द्वारा दी जाने वाली हवि से हम अभय प्राप्त करें। चोरव्याघ्रादि से होने वाले भय से मुक्त हों।

व्याकरण – सप्तर्षीणाम् = सप्त च ते ऋषयः, तेषां इति विग्रह, द्विगु समास।

विशेष – विश्वामित्रो जमदग्निर्भरद्वाजोऽथ गौतमः, अत्रिर्वसिष्ठः कश्यप इत्येते सप्त ऋषयः।

अस्मै ग्रामाय प्रदिशश्चतस्र ऊर्जं सुभूतं स्वस्ति सविता नः कृणोतु।
अशत्रिन्द्रो अभयं नः कृणोत्वन्यत्र राज्ञामभि यातु मन्युः।।2।।

अन्वय – अस्मै ग्रामाय प्रदिशः चतस्रः ऊर्जं सुभूतं स्वस्ति नः सविता करोतु। अशत्रुः इन्द्रः नः अभयं कृणोतु। राज्ञां मन्युः अन्यत्र अभि यातु।

शब्दार्थ – अस्मै = इस, ग्रामाय = ग्राम के लिये, प्रदिशः = पूर्वादि दिशायें, चतस्रः = चारों, ऊर्जम् = अन्न, सुभूतम् = सुन्दर उत्पन्न हो, स्वस्ति = तथा कल्याणकारी हो, नः = हमारे लिये, सविता = सभी के प्रेरक सूर्य देव, कृणोतु = करें, अशत्रुः = अनुपजातविरोधी, इन्द्रः = इन्द्र देव, नः = हमको, अभयं = शत्रुविषयक भयाभाव, कृणोतु = करें, तथा राज्ञां = राजा का, मन्युः = क्रोध, अन्यत्र = कहीं और, अभि यातु = चला जाये।

अनुवाद – हमारे आवा भूत इस ग्राम की पूर्वादि चारों दिशायें प्रभूत अन्न उत्पन्न करने वाली हों तथा वह कल्याणयुक्त हो। सूर्य हमारा शाश्वत् कल्याण करे। इन्द्र देवता हमें शत्रुओं से मुक्त करे। इन्द्र देव के प्रसाद से राजाओं का क्रोध हमसे बहुत दूर चला जाये।

व्याकरण – अस्मै ग्रामाय = यहाँ षष्ठी के अर्थ में चतुर्थी का प्रयोग हुआ है। **प्रदिशश्चतस्रः** = यहाँ अत्यन्त संयोग में द्वितीया का प्रयोग है।

विशेष – शत्रुओं से मुक्ति हेतु तथा राजकोप से रक्षण हेतु प्रार्थना की गई है।

अनमित्रं नो अधरादनमित्रं न उत्तरात्।
इन्द्रानमित्रं नः पश्चादनमित्रं पुरस्कृधि।।3।।

अन्वय – हे इन्द्र, नः अधरात् अनमित्रं कुरु। उत्तरात् नः अनमित्रं कुरु। नः पश्चात् अनमित्रं कुरु। तथा च पुरः अनमित्रं कृधि।

शब्दार्थ – हे इन्द्र, नः = हमको, अधरात् = दक्षिण दिशा से, अनमित्रम् = शत्रुरहित करो, उत्तरात् = उत्तर दिशा से, नः = हमको, अनमित्रम् = शत्रुविहीन करो, नः =

हमको, पश्चात् = पश्चिम दिशा से, अनमित्रम् = शत्रुविहीनता प्रदान करें तथा हे देव, नः = हमें, पुरः = पूर्व दिशा से, अनमित्रम् = शत्रुविहीन, कृधि = करें।

वाक् (10.125), पुरुष (10.90), मरुत्(1.85), अभय (6.40)

अनुवाद – हे इन्द्र हमको दक्षिण दिशा से शत्रुरहित करो, उत्तर दिशा से हमको शत्रुविहीन करो, हमको पश्चिम दिशा से शत्रुविहीनता प्रदान करें तथा हे देव हमें पूर्व दिशा से, शत्रुविहीन करें।

व्याकरण – **अधर** शब्द से दक्षिण दिशा जाननी चाहिये।

विशेष – पूर्वादि चारों दिशाओं को शत्रुओं से रहित करने की प्रार्थना की गई है।

11.6 सारांश

प्रिय विद्यार्थियों! इस इकाई में आपने वाक्, पुरुष, मरुत् और अभय सूक्त के मन्त्रों का अध्ययन किया। आपने जाना कि वाणी की सर्वव्यापकता अपूर्व है। उसके द्वारा अनेक दैवीय शक्तियों के अनेक तत्त्वों का नियन्त्रण भी किया जाता है। वस्तुतः कैसी भी सृष्टि उसकी इच्छा के अधीन है। सृष्टि, स्थिति, संहार यह त्रैविध्य भी वाक् देवता के अधीन है।

अनन्तशरीरावयवी विराट् पुरुष मुख्यतः सृष्टिकर्त्ता है। उसकी महिमा से भूलोक, अन्तरिक्ष लोक तथा द्युलोक की उत्पत्ति हुई। संसार में चर-अचर की सृष्टि वर्णाश्रम धर्म यह सब सृष्टि प्रक्रिया के अंग हैं। विराट् पुरुष का यजन सर्वप्रथम सृष्टियज्ञरूप धर्म था।

मरुत् किंवा मरुद्गण स्व पराक्रम तथा गतिशीलता के क्रम में प्रसिद्ध हैं। पुराणों में इनकी संख्या 49 स्वीकार की गयी है। ये पराक्रमशील, वृष्टिकारक, गतिशील, मेघों के प्रेरक प्रभृति कई नाम देखे जाते हैं। यह स्तोता की कामनाओं के पूरक हैं।

द्युलोक, पृथिवी लोक एवं अन्तरिक्ष लोक, सप्तर्षिगण, सोम एवं सूर्य हमें अभय प्रदान करें। ग्राम की चारों दिशायें, जो तेजयुक्त हैं, सूर्य उनका कल्याण करें तथा राजाओं का क्रोध भी दूर हो। समस्त दिशायें हमें अभय प्रदान करने वाली हों।

11.7 शब्दावली

अभिषव – पत्थर से कूटकर रस निकालना

आज्य – गाय का घी

आयुध – हथियार

अपौरुषेय – जो पुरुष द्वारा निर्मित न हो

आर्द्र – गीला

अवस्थित – स्थित

अनन्तशरीरावयवी – अनन्त शरीर के अवयव वाला

त्रैविध्य – तीन प्रकार का

चर-अचर – सजीव एवं निर्जीव

11.8 कुछ उपयोगी पुस्तकें

1. **द न्यू वैदिक सिलेक्शन** प्रथम एवं द्वितीय भाग, तैलंग एवं चौबे, भारतीय विद्या प्रकाशन, वाराणसी।
2. **ऋग्वेद संहिता,** सायण भाष्य, राष्ट्रियसंस्कृतसंस्थानम्, नई दिल्ली।
3. **अथर्ववेद संहिता,** सायण भाष्य, विश्वेश्वरानन्द वैदिक शोध संस्थान, होशियारपुर।

11.9 अभ्यास प्रश्न

1. ''**अहं राष्ट्री संगमनी वसूनां चिकितुषी प्रथमा यज्ञियानाम्।**

   तां मा देवा व्यदधुः पुरुत्रा भूरिस्थात्रां भूर्यावेशयन्तीम्।।'' मन्त्र की ससन्दर्भ व्याख्या कीजिए।
2. वाक् देवता की सर्वव्यापकता पर संक्षिप्त टिप्पणी लिखिए।
3. ''**तस्माद्यज्ञात्सर्वहुत ऋचः सामानि जज्ञिरे।**

   छन्दांसि जज्ञिरे तस्माद् युजुस्तस्मादजायत।।''मन्त्र की ससन्दर्भ व्याख्या कीजिए।
4. पुरुष सूक्त के सार को संक्षेप में लिखिए।
5. ''**प्र यद्रथेषु पृषतीरयुग्ध्वं वाजे अद्रिं मरुतो रंहयन्तः।**

   उतारुषस्यवि ष्यन्ति धाराश्चर्मेवोदभिर्व्युन्दन्ति भूम।।''मन्त्र की ससन्दर्भ व्याख्या कीजिए।
6. मरुद् गणों के स्वरूप पर संक्षित टिप्पणी कीजिए।
7. ''**अनमित्रं नो अधरादनमित्रं न उत्तरात्।**

   इन्द्रानमित्रं नः पश्चादनमित्रं पुरस्कृधि।।'' मन्त्र की ससन्दर्भ व्याख्या कीजिए।
8. अभय सूक्त के वर्ण्य विषय पर प्रकाश डालिए।